नाटिकानुकारि षड्भाषामयं पत्रम् ।

सं. म. विनयसागर

षड्भाषा में यह पत्र एक अनुपम कृति है । १८वीं शताब्दी में भी जैन विद्वान् अनेक भाषाओं के जानकार ही नहीं थे अपितु उनका अपने लेखन में प्रयोग भी करते थे । लघु नाटिका के अनुकरण पर विक्रम सम्वत् १७८७ में महोपाध्याय रूपचन्द्र (रामविजय उपाध्याय) ने बेनातट (बिलाडा) से विक्रमनगरीय प्रधान श्रीआनन्दराम को यह पत्र लिखा था । इस पत्र की मूल हस्तलिखित प्रति प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के हस्तलिखित संग्रहालय में क्रमांक २९६०६ पर सुरक्षित है । यह दो पत्रात्मक प्रति है। पत्रलेखक रूपचन्द्र उपाध्याय द्वारा स्वयं लिखित है । अतः इसका महत्व और भी बढ़ जाता है ।

इस पत्र के लेखक महोपाध्याय रूपचन्द्र है । पत्र का परिचय लिखने के पूर्व लेखक और प्रधान आनन्दराम के सम्बन्ध में लिखना अभीष्ट है ।

महोपाध्याय रूपचन्द्र :

खरतरगच्छीय श्रीजिनकुशलसूरिजीकी परम्परा में उपाध्याय क्षेमकीर्ति से निःसृत क्षेमकीर्ति उपशाखा में वाचक दयासिंहगणि के शिष्य रूपचन्द्रगणि हुए । दीक्षा नन्दी सूची[१] के अनुसार इनका जन्मनाम रूपौ या रूपचन्द था । इनका जन्म सं० १७४४ में हुआ था । इनका गोत्र आंचलिया था और इन्होंने वि. सं. १७५६ वैशाख सुदि ११ को सोझत में जिनरत्नसूरि के पट्टधर तत्कालीन गच्छनायक जिनचन्द्रसूरि से दीक्षा ग्रहण की थी । इनका दीक्षा नाम था रामविजय । किन्तु इनके नाम के साथ जन्मनाम रूपचन्द्र ही अधिक प्रसिद्धि में रहा । उस समय के विद्वानों में इनका मूर्धन्य स्थान था। ये उद्भट विद्वान् और साहित्यकार थे । तत्कालीन गच्छनायक जिनलाभसूरि

---

१. म० विनयसागर एवं भँवरलाल नाहटा, खरतरगच्छ दीक्षा नन्दी सूची, पृष्ठ २६, प्रकाशक : प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और क्रियोद्धारक संविग्नपक्षीय प्रौढ़ विद्वान् क्षमाकल्याणोपाध्याय के विद्यागुरु भी थे । सं० १८२१ में जिनलाभसूरि ने ८५ यतियों सहित संघ के साथ आबू की यात्रा की थी, उसमें ये भी सम्मिलित थे । विक्रम सम्वत् १८३४ में ९० वर्ष की परिपक्व आयु में पाली में इनका स्वर्गवास हुआ था । पाली में आपकी चरण-पादुकाएँ भी प्रतिष्ठित की गई थीं । इनके द्वारा निर्मित कतिपय प्रमुख रचनायें निम्न है :

संस्कृत :

गौतमीय महाकाव्य - (सं० १८०७) क्षमाकल्याणोपाध्याय रचित संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित है ।

गुणमाला प्रकरण - (१८१४), चतुर्विंशति जिनस्तुति पञ्चाशिका (१८१४), सिद्धान्तचन्द्रिका "सुबोधिनी" वृत्ति पूर्वार्ध, साध्वाचार षट्त्रिंशिका, षट्भाषामय पत्र आदि ।

बालावबोध व स्तबक :

भर्तृहरि-शतकत्रय बाला० (१७८८) अमरुशतक बालावबोध (१७९१), समयसार बालावबोध, (१७९८), कल्पसूत्र बालावबोध (१८११), हेमव्याकरण भाषा टीका (१८२२) और भक्तामर, कल्याणमन्दिर, नवतत्व, सन्निपातकलिका आदि पर स्तबक ।

स्फुट रचनायें :

आबू यात्रा स्तवन (सं० १८२१), फलौदी पार्श्व स्तवन, अल्प-बहुत्व स्तवन, सहस्रकूट स्तवनादि अनेक छोटी-मोटी रचनायें प्राप्त हैं । महोपाध्याय जी की शिष्य परम्परा भी विद्वानों की परम्परा रही है ।

प्रधान आनन्दराम :

आनन्दराम के सम्बन्ध में इस पत्र में केवल यही उल्लेख मिलता है कि ये विक्रमनगर अर्थात् बीकानेर नरेश अनूपसिंहजी के राज्याधिकारी और महाराजा सुजानसिंहजी के राज्यकाल में राज्यधुरा को धारण करने में वृषभ के समान हैं अर्थात् बीकानेर के प्रधान थे । बीकानेर के युवराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोरावरसिंह थे ।

ये किस जाति और किस वंश के थे, इसका कोई संकेत इस पत्र में नहीं है । किन्तु यह स्पष्ट है कि महोपाध्याय रूपचन्द्र के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । राजनीति के अतिरिक्त आनन्दराम प्रौढ़ विद्वान् था, अन्यथा संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी और पैशाची आदि छः भाषाओं में इनको पत्र नहीं लिखा जाता ।

डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड में आनन्दराम के सम्बन्ध में जो भी उल्लेख किए है, वे निम्न हैं :-

महाराज अनूपसिंह के आश्रय में ही उसके कार्यकर्ता नाजर आनन्दराम ने श्रीधर की टीका के आधार पर गीता का गद्य और पद्य दोनों में अनुवाद किया था । (पृष्ठ २८४)

नाजर आनन्दराम महाराजा अनूपसिंह का मुसाहिब था । उसके पीछे व महाराजा स्वरूपसिंह तथा महाराज सुजानसिंह के सेवा में रहा, जिसके समय में विक्रम सम्वत् १७८९ चैत्र वदी ८ (१७३३ तारीख २६ फरवरी) को वह मारा गया । (पृष्ठ २८५)

जब काफीले वालों ने महाराजा सुजानसिंह के दरबार में आकर शिकायत की तो प्रधान नाजर आनन्दराम आदि की सलाह से महाराजा ने अपनी सेना के साथ प्रयाण कर वरसलपुर को जा घेरा । (पृष्ठ २९७)

कुछ ही दिनों बाद नवीन बादशाह (मोहम्मदशाह)ने सुजानसिंह को बुलाने के लिए अहदी (दूत) भेजे, परन्तु साम्राज्य की दशा दिन-दिन गिरती जा रही थी, ऐसी परिस्थिति में उसने स्वयं शाही सेवा में जाना उचित नहीं समझा । फिर भी दिल्ली के बादशाह से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उसने खवास आनन्दराम और मूधड़ा जसरूप को कुछ सेना के साथ दिल्ली तथा मेहता पृथ्वीसिंह को अजमेर की चौकी पर भेज दिया । (२९८, २९९)

सुजानसिंह के एक मुसाहब खवास आनन्दराम तथा जोरावरसिंह में वैमनस्य होने के कारण वह (जोरावरसिंह) उसको मरवाकर उसके स्थान में अपने प्रीतिपात्र फतहसिंह के पुत्र बख्तावरसिंह को रखवाना चाहता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी यह अभिलाषा उसने पिता के सामने प्रकट भी की, पर जब उधर से उसे प्रोत्साहन न मिला तो वह नोहर में जाकर रहने लगा, जहां अवसर पाकर उसने वि० सं० १७८९ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३ ता० २६ फ़रवरी) को आधीरात के समय खवास आनन्दराम को मरवा डाला। जब सुजानसिंह को इस अपकृत्य की सूचना मिली तो वह अपने पुत्र से अप्रसन्न रहने लगा। इस पर जोरावरसिंह ऊदासर जा रहा। जब प्रतिष्ठित मनुष्योंने महाराजा सुजानसिंह को समझाया कि जो हो गया सो हो गया, अब आप कुंवर को बुला लें। इस पर सुजानसिंह ने कुंवर की माता देरावरी तथा सीसोदणी राणी को ऊदासर भेजकर जोरावरसिंह को बीकानेर बुलवा लिया और कुछ दिनों बाद सारा राज्य-कार्य उसे ही सौंप दिया। (पृष्ठ ३००)

इसी इतिहास के अनुसार तीनों राजाओं का कार्यकाल इस प्रकार है :

१. महाराजा अनूपसिंह जन्म १६९५, गद्दी १७२६, मृत्यु १७५५
२. महाराजा सुजानसिंह जन्म १७४७, गद्दी १७५७, मृत्यु १७९२
३. महाराजा जोरावरसिंह जन्म १७६९, गद्दी १७९२,

ओझाजी ने आनन्दराम को महाराजा अनूपसिंह का कार्यकर्ता नाजर, तो कहीं महाराजा अनूपसिंह का मुसाहिब माना है। महाराजा सुजानसिंह के समय प्रधान माना है और उनको एक स्थान पर कूटनीतिज्ञ और खवास भी कहा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तीनों महाराजाओं के सेवाकाल में रहते हुए वह मुसाहिब और कूटनीतिज्ञ तो था ही।

पत्र का सांराश :

लघु नाटिका के अनुकरण पर षड्भाषा में यह पत्र रूपचन्द्र गणि ने बेनातट आश्रम (बिलाडा के उपाश्रय) से लिखा है। देवसभा में इन्द्रादि देवों की उपस्थिति में सरस्वती इस नाटिका को प्रारम्भ करती है। मर्त्यलोक का परिभ्रमण कर आये बृहस्पति आदि देव सभा में प्रवेश करते है और मृत्यु लोक का वर्णन करते हुए मरु-मण्डल के विक्रमपुर / बीकानेर की शोभा का वर्णन करते है। साथ ही सूर्यवंशी महाराजा अनूपसिंह, महाराजा सुजाणसिंह और युवराज जोरावरसिंह के शौर्य और धार्मिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियाकलापों का तथा जनरजंन का वर्णन करते है । इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति आदि समस्त देवताओं की उपस्थिति में उर्वशी के अनुरोध पर सरस्वती आगे का वर्णन प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि भाषाओं में मधुर शब्दावली में नगर, राजा, प्रधान इत्यादि के कार्य-कलापों का प्रसादगुण युक्त वर्णन करती है । इस प्रकार देवसभा को अनुरंजित कर लेखक महाराजा, राजकुमार और आनन्दराम को धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हुए पत्र पूर्ण करता है । यह पत्र मिगसर सुदि तीज सम्वत् १७८७ आनन्दराम के कुतूहल और उसको प्रतिबोध देने के लिए यह पत्र लिखा गया है ।

प्राय: जिनेश्वर भगवान् की स्तुति में ही जैन कवियों ने अनेक भाषाओं का प्रयोग किया । किन्तु व्यक्ति विशेष के लिए पत्र के रूप में अनेक भाषाओं का प्रयोग अभी तक देखने में नहीं आया, इस कारण यह कृति अत्यन्त महत्त्व की है ।

विक्रमनगरीयप्रधानश्रीआनन्दरामं प्रति वेनातटात् श्री रूपचन्द्र (रामविजयोपाध्याय) प्रेषितम्

नाटिकानुकारि षड्भाषामयं पत्रम् ।

॥८०॥

स्वस्तिश्रीसिद्धसिद्धान्ततत्त्वबोधा(ध) विधायिने ।
अस्तु विद्याविनोदेनात्मानं रमयते सते ॥१॥

कृताधिवसतिः साधुः श्रीमद्वेनातटाश्रमे ।
षड्भाषो(षा) लेखलीलायां **रूपचन्द्रः** प्रवर्तते ॥२॥

अथाऽत्र पत्रोपक्रमे कविः सरस्वतीं सम्भाषते-

स्वर्गाधिवासिनि सरस्वति मातरेहि,
ब्रूहि त्वमेव ननु देवसदोविनोदम् ।
नाट्येन केन भगवान्मघवानिदानीं,
सन्तुष्यति स्वहृदि भावितविश्वभावः ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरस्वती-वत्स ! श्रृणु

मध्येसुरसभं देवः कथारसकुतूहली ।
किञ्चिद्विवक्षुरखिला-मालुलोक सुरावलीम् ॥४॥

अथ समेऽपि समवहिता देवा देवपादाभिमुखं तस्थुः ।

देव :-

भो भोः सुराः कलिरयं कलुषीकरोति,
भूलोकमेतमिव सन्तमसं समस्तम् ।
तेनान्वहं सुकृतवर्त्म विहाय मोहात्,
सर्वत्र सम्प्रति विशो विपथं विशन्ति ॥५॥

सुरा :- सत्यं भाषन्ते देवपादाः, ओमिति प्रतिश्रृण्वन्ति ।

देवः पुनरपि

तत्रैव कुत्रचिदपि प्रतिपद्य दैवा-
देशं पदं कृतयुगं लभते त्विदानीम् ।
तस्याद्य मे वसति निर्णयमन्तरेण,
श्लाघ्यैरलं बहुरसैरपरैर्विलासैः ॥६॥

अथ सर्वेऽपि सुराः कर्णाकर्णि परस्परं मन्त्रयन्ति । स्वामी कृतयुग-पदजिज्ञासुरस्ति । ततस्तदन्वेषणार्थमालोकितव्योऽस्माभिर्मर्त्यलोकः, तत्रापि मध्यदेशः । यतो वर्ण्यतेऽयं वृद्धैः ।

सुरगिरिरिव कल्पपादपानां, भवति नृणां प्रभावो महीयसां यः ।
विलसति खलु यत्र तीर्थमाता, जयति जगत्यनघः स मध्यदेशः ॥६॥

अतस्त्वरितव्यं तद्विलोकनाय ।

इति निष्क्रान्ता महितदेवा देव्यश्च ।

★

अथ दौवारिकः - जयन्तु भट्टारकाः ! (देवो नयन्ते(ने) न प्रतीच्छति)

दौवारिकः - देव ! मर्त्यलोकादागतः सुरगणो देवदर्शनाभिलाषी द्वारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवदाज्ञां प्रतीक्षते ।

देवः – प्रवेशय आशु तम् ।

अथ दौवारिकः – सुरगणं प्रवेशयति । प्रविश्य,

सुराः – जयन्ति देवपादा ! इति कृताञ्जलिपुटाः भट्टारकं प्रणमन्ति ।

देवः – अस्ति स्वागतं सर्वसुपर्वणामिति हस्तविन्यासेन– समस्तानाश्वासयति ।

सुराः – स्वर्लोके चापि भूलोके पाताले वा सुपर्वणाम् ।
गतिरव्याहता देव ! तव व्याधाम तेजसा ॥८॥

स्मित्वा देवः – जलधरधाराधोरिणि संसेकोत्फुल्लनीपकुसुममिव ।
स्मेरवपुर्भवदीयं शंसति सत्कामसिद्धिमिदम् ॥९॥

गुरुः – अत्रभवद्भिः किमज्ञातमस्ति, तथापि किञ्चिन्नेत्रातिथीकृतं वृत्तं देवपादानां पुरस्तात् सुराः पृथय(क्) पृथय(क्) रूपयितुमुत्सहन्ते ।

देवः – भवतु ।

गुरुः – नो प्राचीं दिशमासमुद्रमखिलाऽपाचीं प्रतीचीं तथो-
दीचीं देव निरीक्ष्य देशनगरग्रामाभिरामां मुहुः ।
आलोक्याऽथ पुरं नु **विक्रमपुरा**भिख्यं मरोर्मण्डले,
नित्योन्मीलनयोर्यथा नयनयोः साफल्यमाप्तं सुरैः ॥१०॥

देवः – सविस्मयम्, कीदृशं तत् ? कश्च तत्राचारः ? ।

गुरुः – राजन् ! यत्र **सुजांणसिंह**नृपतिर्धत्ते भवद्रूपतां,
श्रीजोरावरसिंहनामक इदंसूनर्जयन्तायते ।
देवौपम्यमहो वहन्ति सकला लोकाश्च यद्वासिन--
स्तत्किं देवपुरेण **विक्रमपुरं** न स्पर्द्धते साम्प्रतम् ? ॥११॥

अथ देवो रवेर्मुखमालोक्य, ननु भो दिनपते !

गुरुणा मदुपमोऽयमभिहितो भूपः, प्रतिदिनं गगनं गाहमानेन भवताऽऽलोकितोऽपि किं न ज्ञापितः ? ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनपतिः – सत्रपम्, स्वामिन् ! मत्सन्ततिगुणोत्कीर्त्तनं ममैव नोचितम्,
तथापि रहस्यमेतदेव ।

मदन्वये भूपतयो महान्तः, सन्तीह काले बहवस्तथापि ।
सुजाणसिंहाह्वयभूमिपाते, जाते तुं वंशं कलयामि धन्यम्
॥१२॥

अथ शशधरमुपसृत्य, दिनकरः – वयस्य निशापते । त्वमेव विस्तरेण देवपादानां पुरस्तत्कीर्त्तिं कीर्त्तय, भट्टारकाः श्रोतुमन[स]स्सन्ति ।

शशधरः – भवतु, स्वामिन् !,

भूपाला बहवो भवन्तु भुवने सूर्येन्दुवंशोद्भवा,
ये न न्यायविदो न चापि निपुणा नाचारसञ्चारिणः ।
किं तैः कापुरुषैः कलेः सहचरैर्भूभारभूतैः सदा,
सत्येवाऽथ **सुजांनसिंहनृपतौ** राजन्वती भूरियम् ॥१३॥

निःस्वानेषु नदत्सु देशपतयो नश्येयुरस्याऽरयो-
ऽरण्यं चैव विशेयुराशु चकिताः स्युः श्वापदौघास्ततः ।
ते किं त्वाधिवसेयुरित्यवनिकाक्षोभावनव्याकुला,
दिग्यात्राप्रतिषेधमेवमनशे सन्त्यस्य दिग्दन्तिनः ॥१४॥

यो देवान् यजते प्रजाहितकृते वर्यान् द्विजान् वन्दते,
धत्ते भक्तिमथाऽच्युते प्रतिदिनं सन्मानयत्यर्थिनः ।
साधूंस्तोषयति द्विषो दमयति क्ष्मापालमालेश्वरः,
सोऽयं **श्रीमदनूपसिंहनृपतेः** सूनूर्न कैः स्तूयते ॥१५॥

देवः – कृतयुगप्रवृत्तिरेवाऽयम् ।

शशधरः – पुनः किम् ।

देवः – उर्वश्यभिमुखमालोक्य, आर्ये ! इत एहि ।

उपसृत्य

उर्वशी : – उवट्ठियाम्हि, अज्जा भट्टिणो किमाणवेति ?

देवः – आर्ये !, निर्जरसो जगत्कृत्ये नियोजयितव्याः सन्तीत्यत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इमेऽधुना स्वास्थ्यं लभन्ताम् । भवत्येव सतन्त्र्या तत्रत्यवृत्तिं मधुरया प्राकृतगिराऽऽविःकरोतु ।

उर्वशी: - सामीणं आणा पमाणं, अह दाव सुणेह तस्सेव रण्णो कुमारचरियं,

मणहरसभियवयणो घणमित्तजुओ पत्तारगुम्महणो ।
सिर(रि)जोरावरसीहो जयइ कुमारो कुमारुव्व ॥१६॥

अथोर्वशी रतिं विलोक्य स्मित्वा च,

जं दट्ठूण सुरूवं अज्ज अणंगो किमंगवं जाओ ।
इय चिरविम्हियहियया रई ठिया तं अहिलसंती ॥१६॥

विदूषक: - अह तत्थ रइदेवी एतेण सद्धिं अहिलासाणं सिद्धिसंपण्णा । अहवा दलिद्दकलत्तपयं इमाए अवलद्धं ।

उर्वशी : - तुब्भेहिं चेव रई पडिपुच्छणीया ।

रतिरलज्जत ।

देव: - आर्ये ! पुनराख्याहि तच्चेष्टितम् ।

उर्वशी: - पमाणं सामी,

सो जयउ रायपुत्तो जस्स पसाया बुहाण गेहम्मि ।
जं सिरिसरसइवेरं भग्गं खलु चेगवासम्मि ॥१८॥

ईसरभत्ती हियए जस्स मुहे भारई करे लच्छी ।
सो लोआणंदयरो जयउ सया तत्थ जुवराया ॥१९॥

देव: - आर्ये ! अयमपि सत्यवर्त्मानुग एव ? ।

उर्वशी : - अह किं ? ।

देव: - आर्ये ! ब्रूहि, कस्तत्र प्रधानपुरुषो राज्यधुराधरणधौरेय:? ।

उर्वशी : - पसीयउ सामी !, मह सहीओ सूरसेणी-मागही-पिसाई-देवीओ भट्टिणो आलावपसायं संपेहिंते ।

देव: - भवतु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसृत्य **सूरसेनी** - सामिआ, इमाए सहीए सद्धिं **विक्कमनयरं** पासिदूणाहं हरिसुक्करिसमुवगदा । इत्थ णं **आणंदरामनामेणं** रण्णो पहाणपुरिसो दट्ठो । अम्महे भयवं दाव तस्स लावण्णं किं भणेमि ?

देवः - कीदृशोऽसौ ? ।

शूरसेनी-

घडिदूण अज्जउत्तं एदं पुण अज्ज बंभदेवोवि ।
एदारिसं घडेदुं होत्था नोय्येव य समत्थे ॥२०॥
होज्जा कस्सवि जणओ जदि बंभो पुण सरस्सदी जणणी ।
तहवि हु न भोदि लोए वियक्खणो अस्स सारित्थो ॥२१॥

अथ मागधीः - हते ! उवलम । हगेय्येव एदश्शलूवं पलूवयिश्शं । शूरसेनी उपरमति ।

देवः - ब्रूहि मागधि ! तच्चरितम् ।

मागधी : -खलु शिलि **शुयाणशिंघश्श** शामदाणेहिं भेयडंडेहिं ।
पञ्चे शच्चपदिञ्चे लज्जधुलंशे शुणिव्वहदे ॥२२॥
तम्मि पुले शे लाया पुणो वि शे धम्मिए णिवकुमाले ।
शे तत्थ पहाणपुलिशे युत्तमिणं णिम्मिदं विहिणा ॥२३॥

अथ पिशाची : - हले ! उवलम, त(तं) एतस्स फुत्थत्तनं न किय्यत्तो अहं य्येव चानामि ।

देवः - वद त्वमेव ।

पिशाचीः - छहतलसनपलमत्थं यो विंतति सत्थय निफल निऊन ।
अत्थप्पेलक्कलुई सच्चेमक्के पतंतेइ ॥२४॥
सच्चनलक्खनतक्खो समक्कफासालतो मतिमं ।
पहुलोकानंतकलो नत तुआ नंतलामोसो ॥२५॥

विदूषकः - ही ही ! इमाए मागहीपिशाईभगवदीए गिलविलरूवं वाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महुरत्तणं अस्सुदपुव्वं मये सुणिदं ।

देवः – तर्हि अयमपि सत्ययुगानुवर्त्येवाऽस्ति ।

पिशाची : – अह किम् ।

उर्वशी : – (इतोऽवलोक्य) हेजे, अवज्झंसभासाविसारए ! तमवि किं वुत्तकामा चिट्ठसि ? ।

चेटी : – हुं ।

उर्वशी : – सामी, एसावि भट्टिणो आलावपसायं ईहई ।

देवः – ब्रूहि-

चोटी : – रज्जपहाणमणीसि पुण जहां चउब्भुय धन्नु ।
मंतकरण जेस रूवु जहां धणरक्खणउ किसन्नु ॥२६॥

जहिं **विक्कमणयर**हिं रहइं, सुहु जण देवह जेम्वु ।
धम्मह केरी वट्टडी, हल्लइ अप्पण पेम्वु ॥२७॥

घरि घरि देवा पुज्जियइं, घरि घरि दिज्जै(ज्जइ) दाणु ।
घरि घरि महिला सीलवइ, घरि घरि धम्मह ठाणु ॥२८॥

झल्लरि तूर झणक्कडा, हुंति विहाणह संझि ।
दिण दिण हल्लोहलि रहइ, देवल देवल मंझि ॥२९॥

विक्कमणयरह भत्तिडी, सग्गह मज्झि पलोइ ।
सग्गह केरी भत्तिडी, **विक्कमणयर**हिं जोइ ॥३०॥

इति उपरमति ।

अथ गुरुः – समसंस्कृतेन,

इदमेव नगरमरिबलतापविहीनं विसारिगुणपीनम् ।
नहि नहि पापाधीनं, भूयो भूयो वदामीनम् ॥३१॥

अथ देवः – (प्रसद्य) आलब्धमत्रैव कृतयुगसदमिति समाधाय देवनायको देवविधेयान् साधयति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति रञ्जिता देवपर्षत् ।

राजंश्चिरं जीव विधेहि राज्यं,
चिरं महाराजकुमार ! जीव ।
आणन्दरामाऽन्वहमेव नन्द,
श्रीधर्मलाभं सततं वहस्व ॥३२॥

इति श्री नाटिकानुकारिषड्भाषामयं पत्रम् । लिखितं मार्गशीर्षासित-तृतीयातिथौ १७८७ वर्षे ।

आनन्दरामस्य कुतूहलार्थं,
भाषाश्च षट् तं प्रतिबोधनार्थम् ।
सर्वज्ञपुत्रत्वकवित्वसंज्ञो-
न्मादप्रमोदादहमप्यखेलम् ॥१॥

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org